संगीत का लालित्य

-डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

ललित एक विशेषणमूलक शब्द है। यह शोभन के अर्थ में प्रयुक्त होता है और जिसमें ललताई शोभा हो, नमक सरीखा लावण्य हो और गुणों का संतुलन हो, उसके लिए प्राय: ललित शब्द काम में लिया जाता है। किसी भी शब्द के आगे इसे लगाए जाने पर वह विशेषण युक्त हो जाता है। पूर्वकाल में अनेक ग्रन्थों का नामकरण इस विशेषण के प्रयोग से हुआ है। अनेक कलाएं भी ललित वर्ग के अन्तर्गत मानी जाती हैं। संगीत, चित्रकला और सुवर्णालंकरण जैसी कलाएं भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। रंग, रस, रूप और राग से जुड़े विषयों को प्राय: ललित माना जाता है।

ललित

विस्तर, ललित विस्तरा, ललित विज्ञान, ललित लहरी, ललित तरंग जैसे ग्रन्थों का नाम हमें ज्ञात होता है। बौद्ध विद्वानों ने ललित विषयों को लेकर 'ललित विस्तर' ग्रन्थ का प्रणयन किया है जो भारतीय ज्ञानानुशासन का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है लेकिन इसमें मूलत: तथागत के गर्भवास से लेकर धर्मचक्र प्रवर्तन तक का इतिवृत्त ललित शैली में निबद्ध है। यह बौद्धों के महायान की मान्यताओं पर आधारित है और इसी कारण पूरे एशिया महाद्वीप में इसका प्रचार रहा है। यह मूलत: तिब्बत की भोटलिपि में प्राप्त हुआ। आचार्य शिवमंगलसिंह सुमन ने इसके परिचय में लिखा है कि धर्मप्रचारकों ने बुद्ध का लोकोत्तर चरित्र प्रभविष्णु बनाने के लिए चमत्कारों का भी इसमें समावेश कर दिया था। सत्ताइस अध्यायों के इस रमणीय ग्रन्थ में गद्य और पद्य दोनों का समावेश किया गया है। भाषा लौकिक संस्कृत होने पर भी पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रयोगों से प्रभावित है। भोटभाषा के विद्वान आचार्य शांतिभिक्षु शास्त्री ने इस पर साधिकार कार्य किया है।

ललित अप्सरा संगीत

ललित विस्तार के समुत्साह नामक परिवर्त में अप्सरा-संगीत का वर्णन हुआ है। यह बोधिसत्व के महाविमान और धर्म सांकथ्य अर्थात् धर्म प्रवचन के प्रसंग में है। ग्रन्थकार का मत है कि इस संगीत का प्रयोग शतसहस्र अर्थात् लाख नियुत या खरबों की संख्या में अप्सराओं द्वारा किया जाता था और गाने-बजाने व नाचने के लिए प्रयोग होता था। इसकी प्रस्तुतियों के लिए जिस ललित निर्माण कला वाले प्रासाद का वर्णन है, वह अपनी विशद शब्दावली के लिए चमत्कृत करने वाला है।

अनेक भूमिकाओं या तलों में वितर्दियों अथवा चबूतरों, निर्यूहों या अटारियों, तोरणों या द्वार के बाहरी भागों, गवाक्षों या गोरखों हवा जाली वाले झरोखों, कूटागारों या सबसे ऊंचें तल पर बने अंटों का प्रयोग होता था, ऐसे प्रासाद उक्त संगीत के लिए योग्य माने गए। इसी प्रकार वहां की निर्मितियां तलों या छत के खुले आंगनों से भलीभांति अलंकृत, फहराते हुए छत्रों, ध्वजाओं, पताकाओं वाले, रत्नों की किंकणियों अर्थात् छोटी-छोटी घंटियों वाली जाली-झालर लगे वितानों या चन्दवों से व्याप्त थीं। अप्सरा संगीत के लिए वहां पर जिन वृक्षों और उनके पुष्पों की छटा का वर्णन हुआ है, वह भी रोचक है। मान्दारव तथा महामान्दार व नाम के देवलोक में होने वाले पुष्पों को फैलाकर सजाए जाते, अतिमुक्तक या माधवी लता, चम्पक, पाटल, कोविदार या चमरिक, मुचिलिन्द एवं महामुचिलिन्द जैसे वृक्षों, अशोक, न्यग्रोध, तिन्दुक, असन अथवा गुलदुपहरिया, कर्णिकार, केसर, बकुल या मौलसिरी, तमाल, साल तथा रत्नों के महावृक्षों से सुशोभा रहती।

इसमें यह भी कहा गया है कि इस संगीत के साथ ही शुक, सारिका, कोकिल, हंस, मयूर, चक्रवाक, कुणाल या बहुत कूकने वाले हिमवंत के कोयल, कलविंक अर्थात् चटक या गौरैया, जीवंजीव या चकोर जैसे अनेक प्रकार के पक्षियों का कलरव भी संगीत को द्विगुणित शोभा प्रदान करता। धर्म की संगीति के अवसर पर ऐसा प्रयोग होता जिससे काम-क्लेश का निवारण होता। इसमें 84 सहस्र वाद्य तथा संगीतियों अर्थात् गान की प्रवृत्तियों के ध्वनित होने से बोधिसत्व के पूर्व शुभ कर्मों की वृद्धि होती और प्रेरणा देने वाली गाथाएं स्फुट होती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध संगीतियों में इस प्रकार के संगीत का मंगल अवसर होता था। यह विराट संगीत सभाओं का लक्षण भी लगता है जिसमें लालित्य लिए संगीत लहरियां लक्षित होतीं।

ऐसे संगीत में स्मरणीय गाथाएं आर्या छन्द में इस प्रकार हैं।